# 

दादू के शिष्य 17वीं सदी की शुरूआत से ही शिक्षा प्राप्त करने काशी जाते थे। इस बात की पुष्टि दादूपंथ के प्राचीन स्रोत करते हैं। सुन्दरदास के समकालीन राघवदास का 'भक्तमाल' यह कहता है कि सुन्दरदास ने ग्यारह वर्ष की आयु में ही बनारस जाकर वेदांत और पुराणों की शिक्षा प्राप्त की थी-

# एकादस बरष मै त्याग्यौ घर माल सब , बेदांत पुरांन सुने बनांरसी जाइ कैं ।।<sup>1</sup>

17वीं सदी के पहले दशक में ही रज्जब, जगजीवन दास आदि गुरु भाइयों के साथ सुन्दरदास काशी गये थे। काशी के असीघाट पर दादू मठ के नाम से दादूपंथियों का स्थान भी रहा है, जिसे 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक 'सूरेके' अग्रवाल महाजनों से आर्थिक सहयोग मिलता रहा।<sup>2</sup> सुन्दरदास के काव्य में जितना शास्त्रीय पक्ष मिलता है, काव्य-शास्त्र का जितना ज्ञान पाया जाता है, उस पर बनारस में उनकी शिक्षा, शास्त्रों

के पठन, श्रवण और मनन, विद्वानों से चर्चा का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है।<sup>3</sup> सुन्दरदास का काशी जाकर वेदान्त, योग, संस्कृत-काव्य व व्याकरण से जुड़े ग्रंथों का विधिवत अध्ययन करना व ब्रजभाषा में उन पर काव्य रचना करना हमारे सामने कई सवाल छोड़ता है। क्या उस युग में उच्च शिक्षा पाने के लिये इन ग्रन्थों के ज्ञान को अनिवार्य समझा जाता था ? शास्त्र ज्ञान के प्रति ऐसा रुझान सिर्फ दादूपंथ का ही था या अन्य पंथों में भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है? या क्या सुन्दरदास के युग में संतों की पीढ़ी (जो कबीर, रैदास, नानक, दादू, आदि के बाद में आई) वह निर्गुण भक्ति का शास्त्रीय आधार खोज रही थी ?

इन सभी प्रश्नों के जवाब खोजने से पहले यही जानना अर्थपूर्ण होगा कि सुन्दरदास जहाँ शिक्षा प्राप्त करने गए, वह नगर यानी बनारस शिक्षा का कैसा केन्द्र हुआ करता था ? कौनसे आचार्य या साधक वहाँ रहते थे? जिनसे ज्ञान-लाभ लेने राजस्थान के संत भी काशी जाते थे। शिक्षा के केन्द्र तो देश में अन्य जगह भी थे लेकिन दादूपंथियों ने बनारस को ही क्यों चुना? हमें सुन्दरदास के समकालीन बनारस की एक तस्वीर खींचनी होगी ताकि उस युग में उच्च शिक्षा के वातावरण का बेहतर ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

## 1. सुन्दरदास के काव्य पर बनारस की शिक्षा का प्रभाव

सुन्दरदास के युग में दरबारों, मठों, पंथों, सम्प्रदायों और पारम्परिक गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा का माध्यम संस्कृत के साथ अरबी-फ़ारसी भी हुआ करता था। कुछ नगर किसी विशेष दर्शन या सिद्धांत की शिक्षा के केन्द्र के रूप में ही जाने जाते थे। जैसे मिथिला न्याय और तर्कशास्त्र का, नदिया (नवद्वीप) नव्य-न्याय का तो मथुरा दर्शनशास्त्र के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र था। इनके अलावा उत्तर भारत में कश्मीर, मुल्तान, सरहिंद, थट्टा आदि शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे।<sup>4</sup> इसी तरह बनारस, जहाँ सुन्दरदास अपने गुरुभाइयों के साथ शिक्षा प्राप्त करने गये थे, परम्परा से वेदों और पुराणों की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। 16वीं के उत्तर-भारत में जैसे ही मुग़ल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण होता है, बनारस शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन जाता है, जहाँ सुदूर प्रदेशों से छात्र पढ़ने आते थे।<sup>5</sup> 16वीं सदी से ही संस्कृत काव्य और व्याकरण के साथ-साथ वेदान्त की शिक्षा के लिये बनारस विशेष रूप से जाना जाने लगा था।<sup>6</sup> ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में आने वाले विदेशी यात्रियों जैसे बर्नियर (17वीं सदी) और ट्रेवर्नियर (17वीं सदी) और मुग़लकालीन इतिहासकारों जैसे अबुलफ़जल (16वीं सदी) ने बनारस को वेदों, पुराणों या हिन्दू धर्म की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र माना है।<sup>7</sup> यूरोपियन यात्री ट्रेवर्नियर, जिसने 1640-66 ई. के बीच भारत की यात्रा की थी, बनारस के एक सुदृढ़ कालेज का वर्णन करता है, जिसे आमेर के राजा जयसिंह ने बनवाया था। इस कालेज में राजकुमार और ब्राह्मण संस्कृत के माध्यम से शिक्षा पाते थे।<sup>8</sup> इन उदाहरणों से पता चलता है बनारस को शिक्षा के केन्द्र में विकसित करने में मुगल-राजपूत संबंध अहम भुमिका निभा रहे थे।

16वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही बनारस में अद्वैत वेदान्त से जुड़ी साहित्यिक गतिविधियाँ तेज़ हो जाती हैं। इसमें मधुसूदन सरस्वती (1570 ई. के आस-पास) के बनारस में होने और उनकी शिष्य परम्परा ने बड़ी भूमिका निभाई। इससे पहले अद्वैत वेदान्त केवल दक्षिण भारत में ही प्रसिद्ध था। इसलिए 16वीं सदी में अद्वैत-वेदान्ती भट्टोजी और रंगोजी दीक्षित बनारस से दक्षिण भारत गए थे और अप्पय दीक्षित तथा नृसिंह दीक्षित दक्षिण भारत से बनारस आए थे।<sup>9</sup> तात्पर्य यह है कि 16वीं सदी के अंत से उत्तर भारत में अद्वैत वेदान्त संबंधी चर्चाएँ, ग्रंथ-लेखन जैसे कार्यकलाप तेज़ होने लगते हैं, और बनारस उसका मुख्य केन्द्र बन जाता है। 16वीं सदी के अन्त होते-होते शंकराचार्य के अद्वैतवाद को मानने वाले कई सन्यासियों का बनारस के पंडितों में बहुत प्रभुत्व था। नारायण भट्ट और उनके पुत्र शंकर भट्ट जो बनारस के पंडितों की सभा के मुखिया थे, उनका पद बाद में कविन्द्राचार्य सरस्वती ने लिया था। कविन्द्राचार्य

सरस्वती अद्वैत-वेदान्ती थे और बनारस के पंडितों की सभा के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने मुग़ल बादशाह शाहजहाँ से हिन्दुओं से लिया जाने वाला जज़िया कर समाप्त करवाया था।<sup>10</sup> शाहजहाँ के पुत्र दारा-शुकोह ने भी बनारस के पंडितों को संरक्षण दिया था और 50 के लगभग उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद भी करवाया था। कुल मिलाकर 16वीं सदी के अन्त से लेकर 18वीं सदी तक बनारस में अद्वैत-वेदान्ती सन्यासियों और गृहस्थों ने साहित्यिक संस्थाओं और लोक पर प्रभुत्व जमाए रखा था। मध्वाचार्य के कुछेक मतानुयायियों के अलावा पंडितों की सभी सभाओं में इन्हीं अद्वैत-वेदान्तियों को प्रमुख स्थान मिलता था।<sup>11</sup>

17वीं सदी की शुरूआत में वेदांत के इन प्रसिद्ध आचार्यों में भट्टोजी दीक्षित (1590 ई.), पुरुषोत्तम सरस्वती (1600 ई.), अप्पदेव द्वितीय (1610 ई.), बालभद्र (1610 ई.), रामतीर्थ यति (1610 ई.), रंगोजी भट्ट (1610 ई.), धर्मेय्य दीक्षित (1640 ई.), सदानन्द काश्मीरक (1650 ई.) जैसे प्रसिद्ध वेदान्ती बनारस में रह रहे थे। ये वेदान्ती कभी टीकाएँ लिखते थे, तो कभी स्वतन्त्र ग्रंथ लिखकर वेदान्त पर चल रहे विमर्श में भाग ले रहे थे।<sup>12</sup> इन वेदान्ती ब्राह्मणों के पास 5-6 छात्र भी हुआ करते थे जो या तो उनके घर या मन्दिर, बाग़ या किसी सार्वजनिक जगह पर शिक्षा प्राप्त करते थे। अपनी शिक्षा पूर्ण करने पर स्मृति के आधार पर काव्यों को सुनाना और उनकी व्याख्या करना, धोत-परीक्षा (दरबारी पंडित से शास्त्रार्थ), शलाका परीक्षा (जिस पृष्ठ पर सुईं चुभोई हो उस पृष्ठ का अर्थ करना) आदि से छात्रों का मूल्यांकन होता था। सार्वभौम, सारयंत्री, उपाध्याय, महोपाध्याय, पीयूषवर्ष, पक्षधर, अकबरिया कालिदास

आदि उपाधियों से परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों को विभूषित किया जाता था।<sup>13</sup> अद्वैत-वेदान्त के सबसे प्रतिष्ठित आचार्य जिस नगर में रहते हों (तथा उनमें से कुछ सुन्दरदास के समकालीन भी हों) ऐसे शहर बनारस में शास्त्र-शिक्षा के जीवन्त

माहौल का प्रभाव सुन्दरदास पर पड़ना आश्चर्य की बात नहीं थी। सुन्दरदास ने बनारस में बहुत समय गुज़ारा और उनके साहित्य पर जो वेदान्त, संस्कृत काव्य और व्याकरण का प्रभाव है उससे यह ज्ञात होता है कि हिन्दू-धर्म से जुड़ी मानी जाने वाली उस समय की उच्च-शिक्षा (हायर ऐज़ुकेशन) उन्हें मिली थी।14 हालाँकि इस बात के उदाहरण नहीं मिलते जिसमें सुन्दरदास ने वेदान्त के किसी ग्रंथ पर कोई टीका लिखी हो या किसी वेदान्ती से उनका कोई शास्तार्थ हुआ हो। लेकिन उनके समग्र काव्य में अद्वैत वेदान्त को जो प्रतिष्ठा मिली उससे यह कहा जा सकता है कि सुन्दरदास इस दर्शन पर चल रही साहित्यिक गतिविधियों से गहरे में परिचित थे। इसका प्रमाण यह है कि संस्कृत काव्य, उपनिषदों और भगवत्-गीता का ज्ञान उनकी कविता में जगह-जगह दिखता है। सुन्दरदास के 'सवैया' और 'साखी' ग्रंथों में आए 'अद्वैत-वेदान्त' और 'सांख्य' वाले 'अंगों', 'पंचेन्द्रिय चरित्र', 'ज्ञान समुद्र' आदि ग्रंथों में उनका उपनिषदों का ज्ञान भरा-पड़ा है। 'ज्ञान समुद्र' ग्रंथ में वे 'परा-भक्ति' को 'नवधा' और 'प्रेमा-लक्षणा' से उत्तम मानते हैं। जब वे अद्वैत पर बात करते हैं तो एक वेदान्ती की तरह गुरु-शिष्य संवाद के माध्यम से उसके मुख्य तत्व समझाते हैं, और साधक को उसी अद्वैत वेदान्त के माध्यम से 'तुरीयावस्था' की प्राप्ति या ब्रह्म के साक्षात्कार करने की बात करते हैं।

# तुरिया साधन ब्रह्म कौ, अह्म ब्रह्म यों होइ । तुरियातीत हि अनभवै, हूँ तूँ रहे न कोई ।।<sup>15</sup>

अद्वैत वेदान्त को गहरे में जानते हुए भी सुन्दरदास पूरी तरह से किसी वेदान्ती की शैली में कविता नहीं रचते, वे कबीर, दादू आदि संतों की परम्परा में ही स्वयं को स्थापित करते हैं। वे ज्ञान प्राप्ति के द्वारा परमात्मा के साक्षात्कार को प्रमुख स्थान देते हैं। संत परम्परा की भक्ति को वे अपने शास्त्र ज्ञान के आधार पर व्याख्यायित भी करते हैं। उदाहरण के लिए उनके 'ज्ञान समुद्र' के 'भक्ति योग' वाले अध्याय को देखा जा

सकता है। इस अध्याय में वे 'नवधा' भक्ति, फिर 'प्रेमा-लक्षणा' भक्ति को समझाते हैं, लेकिन उत्तम प्रकार की भक्ति 'परा-भक्ति' को बताते हैं, ठीक वही जो हमें कबीर, दादू आदि संतों की कविता में दिखती है। 'परा-भक्ति' वह है जिसमें साधक ज्ञान के माध्यम से भगवान को तत्व रूप में जानता है, जिससे सेवक और सेव्य का एकाकार हो जाता है, लेकिन सेवक अपने दासत्व भाव को सदैव बनाए रखता है, वही 'परा-भक्ति' है और सुन्दरदास के अनुसार उत्तम भी है-

> सेवक सेव मिल्यौ रस पीवत भिन्न नहीं अरु भिन्न सदा हीं । ज्यौं जल बीच धर्यौं जल पिंड सु पिंड रु नीर जुदे कछु नांहीं ।। ज्यौं दृग मैं पुतरी दृग येक नहीं कुछ भिन्नसु भिन्न दिखांही । सुन्दर सेवक भाव सदा यह भक्ति परा परमातम मांही ।।<sup>16</sup>

यहाँ सुन्दरदास जिस परा भक्ति की बात करते हैं और 'नवधा' तथा 'प्रेमा लक्षणा' से परे जाकर परमात्मा को या यथार्थ रूप से जानने की बात करते हैं, वैसा ही भाव 'भगवत्-गीता' में भी व्यक्त हुआ है-

# मुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये । यततामपि सिद्धानां कश्चिचन्मां वेत्ति तत्त्वत: ।।<sup>17</sup>

अपनी कविता में सुन्दरदास एक ओर काव्यशास्त्र और व्याकरण की बनारस से मिली शिक्षा को आत्मसात किये हुए नज़र आते हैं, वहीं दूसरी ओर ऐसे स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखते हैं जिनका विचार सीधे उपनिषदों से लिया हुआ होता है। ऐसा ही एक छोटा ग्रंथ 'स्वप्न-प्रबोध' है, जिस पर 'मांडूक्य' उपनिषद् का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। 'मांडूक्य' उपनिषद् में संसार का मिथ्यातत्व सिद्ध करने के लिये सांसारिक जीवन जीने की तुलना स्वप्न से की हुई है। स्वप्न में भी इन्सान एक दुनिया देखता है और जागने पर उसके मिथ्या होने का भान होता है। उसी प्रकार ब्रह्म के ज्ञान होने पर संसार के मिथ्या होने का भान होता है-

# वैतथ्यं सर्वभावनां स्वप्न आहुर्मनीषिण । अन्त स्तानात्तु भावनां संवृतत्वेन हेतुना ।।<sup>18</sup>

सुन्दरदास ने 'मांडूक्य' उपनिषद् के इसी रूपक को आधार बनाते हुए अपना 'स्वप्न बोध' लिखा है जिसमें 26 दोहों में वे जगत का मिथ्यातत्व सिद्ध करते हैं-

> स्वप्नै में मेला भयौ, स्वप्नै मांहि बिछोह । सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं मोह निर्मोह ।। स्वप्नै में संग्रह कियो, स्वप्नै ही में त्याग । सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नां कछु राग बिराग ।। स्वप्नै मांहि यती भयौ, स्वप्नै कामी होय । सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, कामी यती न कोय ।।<sup>19</sup>

पिछले अध्याय में हमने पढ़ा कि कैसे सुन्दरदास आने योग संबंधी ज्ञान का सन्दर्भ स्वत्वराम की 'हठयोग प्रदीपिका' से देते हैं। उसी प्रकार वे 'योगवाशिष्ट' से भी सन्दर्भ देते हैं, जिससे हमें सुन्दरदास का इन ग्रंथों के पढ़ने या परिचित होने का पता चलता है-

- संसार के सुखनि सौं आसक्त अनेक बिधि इन्द्री हू लोलप मन कबहूँ न गह्यौ है ।
- कहत हैं ऐसे मैं तो एक ब्रह्म जानत हौं ताहि तें छोडि कै शुभ कर्मनि कौं रह्यौ है ।।
- ब्रह्म की न प्रापति पुनि कर्म सब छूटि गये दहुंन तें भ्रष्ट होइ अध बीच रह्यौ है ।
- सुन्दर कहत ताहि त्यागिये स्वपच जैसे याही भांति ग्रंथ मैं बशिष्ट जी हू कह्यौ है । I<sup>20</sup>

सुन्दरदास संस्कृत ग्रंथों से सामग्री लेते तो हैं लेकिन उसे चलती हुई ब्रजभाषा में संतों की भक्ति के अनुसार प्रस्तुत करते हैं। सुन्दरदास की इस प्रवृत्ति से संत-काव्य शास्त्र ज्ञान से समर्थित और सूचित हुआ। जो लोग संस्कृत नहीं पढ़ सकते थे (उनकी संख्या कम भी नहीं थी), वे लोग 'ज्ञान समुद्र' और सुन्दरदास के अन्य ब्रजभाषा के ग्रंथों द्वारा शास्त्र का मर्म समझने लगे। यह सुन्दरदास का युगान्तरकारी काम था। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, अलवर, भरतपुर केन्द्रों तथा मेहरानगढ़ किले जोधपुर और संजय शर्मा म्युजियम तथा सिटी पेलेस जयपुर, गुजरात और उत्तरप्रदेश के संग्रहालयों में सुन्दरदास के काव्य की बड़ी उपस्थिति इस ओर इशारा करती है कि सुन्दरदास ने शास्त्र ज्ञान को देशभाषा-साहित्य में फैलाने में महती भूमिका निभाई। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सुन्दरदास के 'सवैया ग्रंथ' के साथ उनका 'ज्ञान समुद्र' आरंभिक आधुनिक काल के बहुत पढ़े जाने वाले ग्रंथों में शुमार था। सन्त समुदाय का शास्त्र तथा शिक्षा की तरफ़ झुकाव इस बात से भी साबित होता है कि सुन्दरदास की पूरी कविता में से उन्हीं ग्रंथों की पांडुलिपियाँ ज्यादा मिलती हैं जिनमें वे शास्त्र पर बात कर रहे होते हैं या कोई चेतावनी संबंधी कविता कर रहे होते हैं। इन पांडुलिपयों की संख्या सुन्दरदास के 'पदों' को स्थान देने वाली प्रतियों से अपेक्षाकृत ज्यादा है। सुन्दरदास ने संतों-भक्तों, दरबारी-वर्ग तथा आम जन के लिए वेदान्त आदि से सूचित कविता लिखकर वही काम किया, जो केशवदास आदि कवियों ने 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' जैसे रीतिग्रंथ और काव्य-शास्त्र से सूचित कविता लिखकर किया।

सुन्दरदास की कविता में जिस शास्त्र ज्ञान की बात ऊपर की गई है उसका वर्णन तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक हम यह नहीं जान लें कि सुन्दरदास ने कौनसी विधियाँ कविता लेखन में अपनाई जिनको उनके काल में विधिवत रूप से सिखाया जाता था। तात्पर्य है कि काव्य-लेखन की कौनसी शैलियाँ, काव्य-रूप आदि सीधे सुन्दरदास के शिक्षित होने से जुड़ते हैं।

इनमें पहला बिन्दु, छन्दशास्त्र का विधिवत अध्ययन, तो सुन्दरदास के काव्य के सन्दर्भ में पिछले अध्याय में हम कर चुके हैं। छन्द एक तरह से कविता को स्मृति में रखने का सशक्त माध्यम होता था। उस समय की शिक्षा में ग्रंथों को कंठस्थ करना छात्रों को सिखाया जाता था। छंदशास्त्र के ग्रंथ पाठशालाओं में भी पढ़ाए जाते थे। छन्दों के अलावा दूसरा लक्षण जो सुन्दरदास के काव्य में प्रमुखता से दिखाई देता है और जो उनकी शिक्षा से जुड़ा हुआ है, वह है समस्यापूर्ति की प्रवृत्ति, जिसका सहारा सुन्दरदास ने खूब लिया है। समस्यापूर्ति का पाठशालाओं और तत्कालीन दरबारों में बहुत प्रचलन था। आधुनिकता के दबाव के कारण इतिहासकारों ने समस्यापूर्ति को कोरा बुद्धि-विलास और कृत्रिम काव्य बताया है लेकिन समस्यापूर्ति काव्य-रचना का सुन्दरदास के समय में बहुत महत्व था। इसीलिए काव्य-लेखन की यह पद्धति सुन्दरदास की कविता में बहुत नज़र आती है। कवियों की प्रतिभा के परीक्षण के लिए उन्हें एक 'समस्या' दी जाती थी और कुशल कवि अपने काव्य ज्ञान से उसकी पूर्ति करता था। भगीरथ मिश्र समस्या पूर्ति के बारे में लिखते हैं कि "*इसकी गणना चौंसठ* कलाओं में की जाती है...... इसका तो वास्तविक आनन्द किसी अटपटी समस्या को चतुराई से छंद में चमत्कारी ढंग से बैठाने में है, और किसी सामान्य लगनेवाली समस्या में किसी वैचित्र पूर्ण कल्पना या अप्रत्याशित भावना को भरकर चमत्कार की सृष्टि करने में है।" 21 सुन्दरदास के 'सवैया-ग्रंथ' में समस्यापूर्ति का सर्वाधिक प्रभाव देखा जा सकता है। सवैया नाम की व्युत्पत्ति 'स-पाद' से हुई है, जिसका मतलब एक 'पाद'(चरण) का अतिरिक्त होना है। इसीलिए सवैया छन्द को पढ़ते समय अन्तिम चरण को पहले पढ़कर फिर पुरा सवैया पढ़ा जाता है।22 कभी-कभी वह अन्तिम चरण एक 'समस्या' भी होता था। उदाहरण के लिए सुन्दरदास जब तृष्णा के अंतहीन होने तथा इच्छाओं के दमन के प्रति लोगों को आगाह करते हैं, तो एक जैसे 'चरण' हर सवैये

के अंत में आते हैं जो एक समस्यापूर्ति की तरह रखे गए लगते हैं। जैसे 'हे तृष्णा अजहूं नहिं धापी', 'हे तृष्णा अजहूं न अघानी' 'हे तृष्णा कहूं छेह न तेरौ', 'हे तृष्णा अब तो करि तोषा', 'हे तृष्णा अब तो करि तोषा', 'हे तृष्णा कहि कैं तोहि थाक्यौ'-

पेट पसार दियौ जित ही तित तें यह भूख कितीयक थापी । वोर न छोर कछू नहीं आवत मैं बहु भांति भली बिधि मापी ।। देखथ देह भयौ सब जीरण तूं निति नौतन आहि अद्यापी । सुन्दर तोहि सदा समझावत *'हे तृष्णा अजहूं नहिं धापी'* ।।<sup>23</sup> तीनहूं लोक अहार कियौ फिरि सात समुद्र पियौ सब पानी । और जहां तहां ताकत डोलत काढत आंखि डरावत प्रानी ।।

- दांत दिखावत जीभ हलावत याहि तें मैं यह डायनि जानी ।
- सुन्दर खात भये कितने दिन 'हे तृष्णा अजहूं न अघानी' ।।24

इस तरह के एक से लगने वाले अन्तिम चरण उनके सवैया ग्रंथ में अनेकों सवैयों में आते हैं। इनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सुन्दरदास ने ये चरण पहले सोचकर पूरा सवैया बनाया होगा। सुन्दरदास के कई सवैयों पर समस्यापूर्ति की स्पष्ट छाप होना यह सिद्ध करता है कि सुन्दरदास समस्यापूर्ति –जो कवि प्रतिभा का स्वीकृत मानक था और जो मुख्यत: एक दरबारी परम्परा थी --को अपने सवैया ग्रंथ में संत संवेदना के अनुकूल बनाते हैं, इस तरह रीति और भक्ति परम्परा में संवाद स्थापित करते हैं। एक उदाहरण और देखा जा सकता है जिसमें सुन्दरदास ने एक कहावत की समस्यापूर्ति की है-

> देह घटी पग भूमि मंडै नहिं औ लठिया पुनि हाथ लई जू । आंखिहु नाक परै मुख तैं जल सीस हलै करि घींच नई जू ।। ईश्वर कौं कबहूँ न संभारत दुख परै तब आहि दई जू । सुन्दर तौहु बिषै सुख बंछत '*घोरे गये पै बगैं न गई जू'* ।।<sup>25</sup>

सुन्दरदास कहते हैं कि शरीर का बल चला गया है, मृत्यु निकट है लेकिन मनुष्य से विषय-वासनाएँ नहीं छूटतीं। ठीक वैसे ही जैसे बलशाली घोड़े तो चले गए लेकिन उनसे चिपकने वाली मक्खियाँ रह गयीं।

सवैया छन्द लिखने में समस्यापूर्तियों का सहारा लिया जाता था इसका एक और उदाहरण रसखान (जीवनकाल 1557-1638 ई. के लगभग) की कविता भी है। जिस तरह सवैया छन्द के साथ सुन्दरदास का नाम जुड़ गया है उसी तरह रसखान के सवैये भी लोक में बहुत प्रसिद्ध हैं। सवैया भले ही रीति कवियों का प्रसिद्ध छन्द हो लेकिन इस छन्द की लोकप्रियता का कारण रसखान के सवैये ही हैं। इन्हीं रसखान को भिखारीदास अपने ग्रंथ 'काव्य निर्णय' में बड़े आदर के साथ याद करते हैं। <sup>26</sup> रसखान भी भक्ति-रीति दोनों रूपकों का एक ही साथ निर्वाह करते हैं। रसखान के सवैयों की लोकप्रियता का कारण उनमें भावुकता के साथ-साथ गेयता का होना भी है। वे आज भी हिन्दी प्रदेश के लोकवृत का हिस्सा हैं। रसखान ने भी लगभग आठ ऐसे सवैये लिखे हैं जिनका अंतिम चरण **'ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं'** है। जिससे इन सवैयों पर समस्यापूर्ति की छाप नज़र आती है। यह का सवैया उनके सर्वाधिक गाया जाने वाले सवैयों में से एक है-

> सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं । जाहि अनादि अनंत अखण्ड अछेद अभेद सु बेद बतावैं ।। नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं । 'ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ।।<sup>27</sup>

सुन्दर जैसे बहुपठित, बहुश्रुत और देशाटन के शौक़ीन सन्त कवि ने रसखाने के ये सवैये ज़रूर सुने होंगे। क्योंकि रसखान और सुन्दरदास के कुछेक सवैयों में 'अन्तरपाठकीय' तत्व मिलते हैं। रसखान के उपर्युक्त प्रसिद्ध सवैये के साथ सुन्दरदास का यह सवैया पढ़ते हैं तो बात और स्पष्ट होगी-

> शेष महेश गनेश जहाँ लग विष्णु विरंचिहु कै सिर स्वामीं । व्यापक ब्रंह अखण्ड अनावृत बाहरि भीतर अन्तरयामी । वोर न छोर अनन्त कहैं गुन याहि तैं सुन्दर है घन नांमी । ऐसौ प्रभू जिन कै सिर ऊपर क्यौं परिहै तिनकी कहि षांमी ।।<sup>28</sup>

रसखान और सुन्दरदास के उपर्युक्त सवैयों में शब्दों के अलावा भावों में भी समानता देखी जा सकती है। रसखान का यह सवैया स्वयं ही उनकी सगुण कृष्ण भक्ति के रूपक में नहीं समाता जो कृष्ण को अनादि, अनंत और अखंड बताता है, वहीं सुन्दर को अपने 'निर्गुण उपासना कौ अंग' में ऐसा सवैया कहना उपयुक्त ही लगा होगा।

दूसरा लघु-ग्रंथ जो सुन्दरदास के काल में प्रचलित शिक्षण विधियों सशक्त उदाहरण है वह है उनका 'बावनी' ग्रंथ। संतकाव्य में ककहरा, बारहखड़ी, तखती, कक्का, आदि काव्य रूपों का प्रयोग गोरख, कबीर, नानक, भीखा, पल्टू साहब आदि ने किया है, लेकिन सुन्दरदास ने विधिवत रूप से देवनागरी वर्णमाला के बावन अक्षरों को लेकर ब्रह्म ज्ञान संबंधी कविता लिखी है। रीतिकवियों ने बावन छन्दों पर आधारित कविताएँ लिखी हैं जैसे केशवदास की 'रतनबावनी' और भूषण की 'शिवाबावनी'। सुन्दरदास ने संतकवियों में प्रसिद्ध लोक की (मौखिक) परम्परा को लिखित रूप दिया है। साथ ही साथ यह भी दिखाया है कि अपने अक्षर ज्ञान को वैचारिक ज्ञान से जोड़ना ही शिक्षा का उद्धेश्य होना चाहिये। सुन्दरदास की 'बावनी' दोहा-चौपाई शैली में है-

अलख अगह अति अमित अपारा । अकल अमल अज अगम विचारा । ...... आदि न अंत मध्य कहु कैसा । आशा पास नहीं कछु ऐसा ।।<sup>29</sup>

देवनागरी वर्णमाला पर आधारित कविता के अलावा सुन्दरदास ने अरबी-फारसी के वर्णों पर भी कविता लिखी है। जो सुन्दरदास के अरबी-फ़ारसी वर्णमाला के ज्ञान को भी दिखाता है। 'बावनी' जैसी अक्षरों पर आधारित कविता करने की परम्परा सूफ़ी कवियों के यहाँ भी विद्यमान थी और इन सूफ़ियों से सुन्दरदास का सत्संग ज़रूर हुआ होगा-

> ऐंन नहीं अरु ऐंन नहीं है गैंन नहीं अरु गैंन । सुन्दर नुकता आरसी दूरि किये तें ऐंन ।। सुन्दर नुकता भिन्न है मिल्यौ ऐंन सौं नाहिं । मिलि करि दोऊ बांचिये मिले अमिल यौं मांहि ।।<sup>30</sup>

सुन्दरदास ने बनारस में जिस गुरु के सानिध्य में शिक्षा प्राप्त की होगी और जिन शिक्षण विधियों का सहारा लिया होगा उनके जानने के स्रोतों की सीमाएँ हैं। लेकिन एक पाठशाला जहाँ सुन्दरदास के ग्रंथ पाठ्यक्रम का हिस्सा हुआ करते थे, उसका अध्ययन करने के लिए हमारे पास पर्याप्त स्रोत हैं। यह पाठशाला आधुनिक गुजरात प्रदेश के कच्छ राज्य में 18वीं सदी के मध्य में स्थापित हुई थी और 'ब्रजभाषा पाठशाला' या 'भुज की काव्यशाला' के नाम से जानी जाती थी। इस पाठशाला की शिक्षण विधियों, परीक्षा प्रणाली की सुन्दरदास के काव्य से तुलना करके बनारस की संस्कृत आधारित पारम्परिक और गुजरात की ब्रजभाषा आधारित शिक्षा व्यवस्था का बेहतर खाका खींच सकते हैं।

# 2.<u>कच्छ की ब्रज पाठशाला और बनारसी शिक्षा परम्परा से</u> <u>उसकी तुलना</u>

संस्कृत काव्यशास्त्र में दंडी, मम्मट आदि आचार्यों ने 'लोकशास्त्रकाव्याद्य-वेक्षणात्' को भी कविता करने का कारण या 'हेतु' माना है। अर्थात जन्मजात 'प्रतिभा' ही नहीं, लोक-व्यवहार के ज्ञान, शास्त्रों और काव्य के अध्ययन-अन्वेषण द्वारा उत्पन्न निपुणता (व्युत्पत्ति) से भी काव्य रचना संभव है। सरल शब्दों में कहे तो 'कवि जन्म नहीं लेते हैं, निर्मित भी होते हैं। कुछ इन्हीं आदर्शों से प्रेरित हो, गुजरात के कच्छ राज्य की राजधानी भुज में 18वीं सदी के मध्य में एक स्कूल स्थापित हुआ, जिसे 'ब्रजभाषा पाठशाला' या 'भुज की काव्यशाला' कहा जाता था।<sup>31</sup> गुजराती में ऐसा साहित्य उपलब्ध होता है जो इस पाठशाला को कच्छ की कीर्ति का मुकुट मानता है।<sup>32</sup> इस पाठशाला के संस्थापक राव लखपति सिंह (शासनकाल 1741-61 ई.) स्वयं कवि थे और साहित्य, स्थापत्य, संगीत आदि कलाओं को संरक्षण देनेवाले शासक भी। राव लखपत का राजवंश जाड़ेजा राजपूत वंश कहा जाता है। अगले पृष्ठ पर राव लखपत का चित्र देखा जा सकता है।

कच्छ के शासक जाड़ेजा राजपूत वंश पर जैन यतियों का बड़ा प्रभाव रहा है। ये जैन यति संस्कृत, व्याकरण, वैद्यक, भूस्तर, गणित, ज्योतिश और सामुद्रिकशास्त्र के महारथी थे।<sup>33</sup> जैन यतियों के अलावा चारण-भाटों का संबंध इस पाठशाला से शुरू से रहा है जिसका एक कारण कच्छ रियासत के जाड़ेजा राजाओं का राजस्थान की विभिन्न रियासतों के साथ वैवाहिक संबंध होना भी है। राजस्थान में डिंगल के चारण-भाट कवियों को प्रतिष्ठा प्राप्त थी। राव लखपति सिंह का विवाह भी राजस्थान की किसी राठौड़ कुल की रानी से हुआ था। जोधपुर के चारण हम्मीरजी रतनू राव देशलजी प्रथम (1718-41 ई.) के राजकवि और युवराज लखपत के काव्य गुरु थे।<sup>34</sup> कच्छ के मुगल साम्राज्य से मैत्रीपूर्ण संबंध थे और यहाँ के राजा मुगल बादशाहों की सैनिक सहायता के लिये भी जाते थे। मुग़ल साम्राज्य में हो रही साहित्यिक गतिविधियों तथा उनके अधीनस्त राजपूत रजवाड़ों में पनप रही ब्रजभाषा काव्य संस्कृति ने निश्चय ही इस पाठशाला की स्थापना की प्रेरणा दी होगी।<sup>35</sup> इसके अलावा कच्छ, गुजरात से होने वाले व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था और देश के अन्य भागों में हो रही गतिविधियों से अच्छी तरह परिचित था।





उपर्युक्त कुछ वजहें रही होंगी जिनके कारण ब्रजभाषा के भौगौलिक क्षेत्र और उत्तरी हिन्दुस्तान से दूर गुजरात में ब्रजभाषा पाठशाला की नींव पड़ी। कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला की स्थापना में मुख्य भूमिका तपागच्छ शाखा के जैन यति कनक कुशल और कुंवर कुशल ने निभाई थी जिनको महाराव लखपति सिंह अपना काव्य गुरु मानते थे।<sup>36</sup> कनक कुशल इस पाठशाला के प्रथम आचार्य थे। इस पाठशाला में कच्छ, सिन्ध, सौराष्ट्र, काठियावाड़ आदि वर्तमान गुजरात और राजस्थान से कई विद्यार्थी पढ़ते थे जो बाद मे कुशल कवि भी बने। एक शिक्षित कवि राजा का मित्र और पथ प्रदर्शक हुआ करता था।<sup>37</sup> देशभाषा काव्य और काव्यशास्त को महत्व देने वाली यह पाठशाला अपने में अप्रतिम थी जो आरम्भिक आधुनिक काल में ब्रजभाषा के अपने भौगोलिक क्षेत्र के बाहर भी विस्तृत प्रभाव को दिखाती है। इस पाठशाला से पढ़कर निकले कवियों को कहीं राज्याश्रय मिल जाता था तो कुछ कवि सन्त संप्रदायों में दीक्षित हो जाते थे। यह पाठशाला देश की आज़ादी तक चलती रही और 1948 ई. में आकर इसे खत्म कर दिया गया।<sup>38</sup> अपने अंतिम दिनों में ब्रजभाषा पाठशाला इस भवन में चला करती थी-



चित्र-18: भुज की ब्रजभाषा पाठशाला



चित्र-19: भुज की ब्रजभाषा पाठशाला



चित्र-20: भुज की ब्रजभाषा पाठशाला

भारत की आज़ादी के शुभ अवसर पर ब्रजभाषा पाठशाला से पढ़े हुए और इस पाठशाला के अंतिम आचार्य शंभुदान रतनु (गढ़वी) द्वारा तिरंगे और अशोक चक्र में लिखा गया 'चित्र काव्य' इस पर्चे में देखा जा सकता है-



चित्र 21: आज़ादी के अवसर पर भुज-पाठशाला के अंतिम आचार्य द्वारा रचित चित्र-काव्य

पूर्व औपनिवेशिक काल (लगभग 1800 ई. से पहले) में जहाँ शिक्षा का माध्यम साधारणतया संस्कृत या फ़ारसी हुआ करती थी, ब्रजभाषा जैसी जनभाषा में रचित काव्य के महत्व को समझकर, उसे औपचारिक शिक्षा का अंग बनाना वाकई कच्छ-दरबार का एक युगान्तरकारी कदम था। पाठशाला में हो रही गतिविधियों से हमें उस दरबार के राजाओं और शिक्षकों की जागरुकता का पता चलता है, जो देश-काल के साहित्यिक-सामाजिक परिवेश के गहरे ज्ञान से उपजी थी। कवि दलपतराम डाह्याभाई (1820-98 ई.),जो इस पाठशाला में पढ़े हुए थे, का लेखन इस पाठशाला के पाठ्यक्रम को जानने का मुख्य स्रोत है।<sup>39</sup> दलपतराम ने ब्रजभाषा पाठशाला के पाठ्यक्रम में पढ़ाए जाने वाले 28 ग्रंथों का उल्लेख किया है, जिनमें सुन्दरदास के 'सवैया ग्रंथ' और 'ज्ञान समुद्र' को भी प्रमुख स्थान मिला है। केशवदास, बिहारी, मतिराम, वृन्द, जसवंतसिंह, सुन्दर कविराय यानी उत्तर भारत के दरबारों में प्रचलित ब्रजभाषा काव्य जिसके एक बड़े हिस्से को हम 'रीति' कविता कहते हैं, भुज की काव्यशाला में प्रमुख रूप से पढ़ाई जाती थी। रीति-कविता को इस पाठशाला में पढ़ाने का उद्धेश्य देशभाषा की उस समय की सिद्धहस्त या कुशल काव्य परम्परा को भावी कवियों तक पहुँचना था। रीति-कवियों के साथ-साथ गुजराती और डिंगल-कविता तथा भक्त और संत कवि जैसे तुलसीदास और नंददास आदि की रचनाएँ भी पढ़ाई जाती थी। नीति, युद्ध-कला, चिकित्सा और ज्योतिष के साथ-साथ अलंकार, छन्द, कोश, व्याकरण आदि विषयों से जुड़े देशभाषा में रचित ग्रंथ इस पाठशाला के पाठ्यक्रम का हिस्सा थे। नये ग्रंथों को भी समाज में प्रचलन के आधार पर समय-समय पर पाठयक्रम में जोड़ा जाता था, जो इस पाठशाला के अपने साहित्यिक समाज हो रही तत्कालीन गतिविधियों से गहरे जुड़ाव को दर्शाता है। पाठशाला में शिक्षित कवियों ने हिन्दी-उर्दू, फारसी, कच्छी आदि का साहित्य भी लिखा जिसकी ओर बहुत कम

विद्वानों का ध्यान गया है। इस पाठशाला में गद्य भी साहित्य लेखन का माध्यम हुआ करता था।

गौरतलब है कि पुरे भक्ति-काव्य से सुन्दरदास अकेले कवि थे जिनको इस पाठशाला के पाठ्यक्रम में जगह दी गई थी। तुलसीदास को पाठ्यक्रम में बाद में जोड़ा गया।40 रीति कवि, डिंगल के कवि, जिनके ग्रंथ काव्यशास्त्र से ज़्यादा जुड़े हैं, के साथ सर्वप्रथम सुन्दरदास के ग्रंथों को पाठ्यक्रम में स्थान देना वाकई में कई दिलचस्प बातें सामने लाता है। जिसकी एक वजह तो सुन्दरदास ने भक्ति, योग और वेदान्त के सिद्धान्तों, जो उस समय पूरे उत्तर भारत में चर्चित थे, पर साहित्यिक ब्रजभाषा में कविता की थी हो सकती है। दूसरी बात सुन्दरदास ने इन सिद्धांतों को अपने 'ज्ञान समुद्र' ग्रंथ में गुरु-शिष्य संवाद के रूप में सरलता और सहजता से प्रस्तुत किया, जिससे वे पाठशाला के विद्यार्थियों की समझ में आसानी से आ सकते थे। तीसरी और महत्वपूर्ण बात जिसका उल्लेख दलपतराम डाह्याभाई अपने लेख में करते हैं कि 'ज्ञान समुद्र' में नाना प्रकार के छंद हैं। यानी इस ग्रंथ को पढ़कर उस समय के चर्चित ज्ञान को तो पाया ही जाता है, इसके अलावा इसमें अनेक प्रकार के छन्दों (संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की परम्परा के) को भी सीखा जा सकता है। छन्दों के अध्ययन हेतु 'ज्ञान समुद्र' को विशेष रूप से पढ़ा जाता होगा। इस तरह देखा जाए तो एक संतकवि द्वारा प्रणीत ग्रंथ 18वीं सदी के मध्य में स्थापित पाठशाला में भावी कवियों को छन्द-शास्त्र की शिक्षा दे रहा था। यह बात इस अवधारणा के विरोध में जाती है कि निर्गुण संत पढ़े -लिखे नहीं थे या भौतिक जीवन में क्या हो रहा है उससे उनका कोई लेना देना नहीं था। सुन्दरदास के 'सवैया ग्रंथ' को पाठ्यक्रम में स्थान मिलने की भी कुछ ख़ास वजहें रही होगी। दलपतराम 'सवैया ग्रंथ' की महत्ता यह कह कर बताते हैं कि इसमें ज्ञान के विषय की कविता है। इसके साथ यह ग्रंथ भक्ति-काव्य को उस समय के प्रतिभाशाली

कवियों में चर्चित कवित्त-सवैया शैली में भी प्रस्तुत करता था जो शिक्षा के लिये भी उपयोगी था। जहाँ पाठ्यक्रम के अन्य ग्रंथ राजनीति, रस, काव्यशास्त, कोश, व्याकरण, नीति, अलंकार, जैसे विषयों पर थे या चरित और रासो काव्य थे वहीं 'सवैया ग्रंथ' भक्ति-काव्य के जीव-ब्रह्म संबंध, विरह, गुरु, प्रेम, चेतावनी, विपर्यय आदि अनेक विषयों को कुशलता से प्रस्तुत करता था और पाठ्यक्रम में कुछ नया जोड़ता था। यही कारण रहा होगा कि कबीर, रैदास, नामदेव आदि की तुलना में सुन्दरदास के काव्य को इस पाठशाला के पाठ्यक्रम में स्थान मिला होगा।

इस अध्याय में पहले इस बात की चर्चा की गई है कि सुन्दरदास की कविता बनारस में मिली शिक्षा से किस प्रकार प्रभावित थी। फिर इनके ग्रंथ ब्रजभाषा पाठशाला में पढ़ाए जाने से बनारस में मिली शिक्षा का इस पाठशाला से सहज ही संबंध बन गया। सुन्दरदास एक तरह से भारत की पारम्परिक शिक्षा परम्परा को जिसमें संस्कृत व्याकरण, काव्यशास्त्र और धर्मशास्त्र पढ़ाए जाते थे तथा जिनका माध्यम संस्कृत हुआ करती थी, 18वीं सदी में स्थापित देशभाषा काव्य पर बल देने वाली ब्रजभाषा पाठशाला में लाते हैं। कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला में पढ़े कवियों पर सुन्दरदास की कविता का क्या प्रभाव पड़ा? इसका सीधा उत्तर खोजना कठिन है लेकिन इस पाठशाला में कविता करने के कौनसे मानक हुआ करते थे? कवियों की कुशलता का परीक्षण कैसे होता था? आदि का अध्ययन करें तो इनका संबंध सुन्दरदास की कविता से भी जुड़ता है।

सुन्दरदास के काव्य की प्रवृत्तियों जैसे छन्द अलंकारों से सुसज्जित कविता लिखना, छन्द-वैविध्य के द्वारा सैद्धांतिक बात कहना, काव्य लिखने में समस्यापूर्ति का सहारा लेना और 'बावनी' आदि लिखकर देवनागरी के अक्षर ज्ञान को वैचारिक और दार्शनिक ज्ञान से जोड़ना, इन सारी प्रवृत्तियों को ब्रजभाषा पाठशाला में विधिवत रूप

से सिखाया जाता था। ब्रजभाषा पाठशाला में जब कोई विद्यार्थी तीन से पाँच सालों तक अपना अध्ययन पुरा कर लेता था तो उसकी परीक्षा ली जाती थी। परीक्षा उत्तीर्ण करने पर उसे कवि की उपाधि ओर अन्य स्मृति चिन्ह भेंट किये जाते थे। यह परीक्षा पहले कच्छ के राजदरबार में होती थी फिर पाठशाला भवन में ही होने लगी। परीक्षा दोनों रूपों - वाचिक (मौखिक) और लिखित - में होती थी। भुज पाठशाला में पाठ्यक्रम में लगे ग्रंथों पर मौखिक परीक्षा ली जाती थी इसमें ग्रंथों को स्मृति से सुनाना होता था। जिससे छात्रों के छन्द ज्ञान और काव्य-पाठ की परीक्षा होती थी। छन्दों की जानकारी ग्रंथों को याद रखने में मददगार हुआ करती थी। छन्द वैविध्य भाषा के नाद-सौन्दर्य को दिखाकर काव्य-पाठ में नीरसता को तोड़ता है, और काव्य को याद रखने में भी सहायक होता हैं। इस तरह की परीक्षा प्रणाली याद दिलाती है कि भारतीय संस्कृति में मौखिक परम्परा का अहम स्थान रहा है। इसका परीक्षा विधि का संबंध सुन्दरदास के काव्य में छन्दों के महत्व से भी बनता है। सुन्दरदास के बारे में कहा ही जाता है कि वे अपनी स्मृति से कई ग्रंथों को सुना सकते थे और छन्दों में उनकी गहरी दिलचस्पी इसका प्रमाण है। इस पाठशाला ने मौखिक परम्परा और स्मृति को महत्व देकर उसे औपचारिक शिक्षा का अंग बनाया था। ब्रजभाषा पाठशाला में छन्दों, अनेकार्थी और पर्यायवाची नामों पर 'लघु-संग्रह' नामक 'पाठ्यपुस्तक' (जो पाठशाला की पाठयपुस्तकों जैसे नंददास कृत 'अनेकार्थी मानमंजरी' 'नाममाला कोश' तथा जयकृष्णदास कृत 'रूपदीप पिंगल' का संग्रह है) को देखने पर छात्रों को छन्द सिखाने की उत्कृष्ठ शैली का पता चलता है। मसलन 'त्रिभंगी' छन्द को सिखाने की एक विधि है-

> पहिले दस दीजे, दूजे तीजे आठो लीजे, खट चतुरा । नागोके ईसं, जुगति कहींसं, विश्वेवीसं, एव तरा ।।

# बत्तीसो आणो, कला बखाणो, तुक तुक ठाणो, इस ढंगी । चातुरकों भावें, चित्त हुलसावे, छन्द कहावे त्रीभंगी ।।<sup>41</sup>

यह पद त्रिभंगी छन्द की विषेशताएँ बताते हुए कहता है कि इसमें प्रत्येक चरण में 32 मात्राएँ लिखिए, तीन जगह यति होगी, पहली यति दस मात्राओं पर, दूसरी और तीसरी आठ-आठ पर और चौथी छह मात्राओं पर। तुक का विशेष ध्यान रखने को भी कहा है। पूरा छन्द पहले से ही त्रिभंगी की विषेशताओं का निर्वाह करते हुए लिखा गया है जिसमे छन्द की विषेशताएँ और उसका उदाहरण एक साथ मिलते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र में इसी शैली पर लक्षण ग्रंथ लिखे गए हैं।

भुज पाठशाला की लिखित परीक्षा और भी चुनौतिपूर्ण होती थी। लिखित भाग में छात्रों को एक निश्चित अवधि में एक ग्रंथ की रचना करनी पड़ती थी। यह ग्रंथ अक्सर देवनागरी वर्णमाला के बावन अक्षरों को आधार बनाकर किसी विषय पर लिखा जाने वाला 'बावनी' ग्रंथ होता था।

महाराव प्रागमल्लजी (शासनकाल 1860-76 ई.) और महाराव खेंगारजी (तृतीय) (शासनकाल 1876-1942 ई.) के दीवान मणिभाई जसभाई ने बावनी रचने पर इनाम की योजना भी रखी थी इस पुरस्कार पद्धति ने पाठशाला में अनेक बावनियों को जन्म दिया। इस पाठशाला से पढ़े कवियों द्वारा रचित बीस के आस-पास बावनी ग्रंथ मिलते हैं।<sup>42</sup> इन्हीं मणिभाई जसभाई की प्रशस्ति में एक छन्द पाठशाला से पढ़े चारण कवि नवलदान आशिया ने लिखा है जिनकी 'नीति रत्नावली बावनी' प्रसिद्ध है-

### कीनो उपकार ब्रजभाषा सु विद्यालय को, सकल विधि यातें कल कीर्ति विस्तारी है।

पाय प्रभुता की तें दिवान मनिलाल नित्य, सकल विधि ऐसी कल रीति विचारी है।।<sup>43</sup>

हालाँकि यह तो नहीं कहा जा सकता कि पाठशाला के आचार्यों ने सुन्दरदास की बावनी से प्रेरित होकर इस पाठशाला में बावनी रचने की परम्परा शुरू की, लेकिन पाठशाला के आचार्य और विद्यार्थी कवि सुन्दरदास की बावनी से जरूर परिचित होंगे। सुन्दरदास का 'बावनी ग्रंथ' अपनी दार्शनिकता और तकनीकी उत्कृष्ठता के कारण अपने आप में कवि प्रतिभा का पैमाना है-

# ज्ञान उहै कोई जो पावै । ज्ञाता कैं हृदये ठहरावै । ज्ञेय वस्तु कौं जानें सोई । ज्ञानी उन्है और नहीं कोई ।।<sup>44</sup>

सुन्दरदास के 'बावनी' ग्रंथ पर बनारस में हुई उनकी शिक्षा का प्रभाव है, वहीं ब्रजभाषा पाठशाला में बावनी लेखन की लम्बी परम्परा हमें बनारस की पारम्परिक और भुज (गुजरात) की आरम्भिक आधुनिक कालीन शिक्षा पद्धति में समानता दिखाती है।

भुज पाठशाला में लिखित परीक्षा का दूसरा हिस्सा किसी लोक प्रचलित कहावत या काव्यमय पंक्ति पर कविता करना होता था जिसे हम पाद-पूर्ति (समस्या पूर्ति) कहते है। पाद-पूर्ति से किसी कवि के काव्य परम्परा, कवि-समय, शास्त्र और लोक व्यवहार संबंधी ज्ञान को जाँचा जाता था। इससे छात्र हाज़िर-जवाबी का पता तो चलता ही था, इस बात का भी परीक्षण होता था कि कोई छात्र परम्परा प्रसिद्ध बात को अपने दिक्काल के संदर्भ में कैसे मौलिक रूप प्रदान करता है। सुन्दरदास के काव्य पर समस्यापूर्ति की छाप का अध्ययन पहले हो चुका है। सुन्दरदास के काव्य और ब्रजभाषा पाठशाला में औपचारिक रूप से समस्यापूर्ति द्वारा कवियों की परीक्षा विधि हमें उत्तर- भारत में शिक्षा और काव्य रचना के प्रतिमानों की भुज की ब्रजभाषा से अद्भत् समानता दिखाती है।

सुन्दरदास के ग्रंथों का ब्रजभाषा पाठशाला से पढ़े छात्र-कवियों पर जरूर प्रभाव पड़ा होगा। बहत से छात्र-कवि किसी दरबार से संरक्षण पाकर राज-कवि हो गए और कुछ किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होकर संत कवि हो गए। ब्रज पाठशाला से पढ़े सन्त कवियों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित ब्रह्मानंद हैं, जो पहले दरबारी कवि थे फिर गुजरात के प्रख्यात स्वामिनारायण सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए थे।<sup>45</sup> इन ब्रह्मानंद के काव्य और सुन्दरदास की कविता में अद्भृत् समानता है। दोनों की तुलना करने पर ब्रजभाषा पाठशाला में पढ़े संत-कवियों पर सुन्दरदास के ग्रंथों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। जिस तरह सुन्दरदास का ग्रंथ 'सुन्दरविलास' पाठ्यक्रम में लगा हुआ था उसी तर्ज पर ब्रह्मानंद ने अपना 'ब्रह्म विलास' नामक ग्रंथ बनाया। इस ग्रंथ के 20 अंग हैं और अधिकतर 'सुन्दरविलास' से मेल खाते हैं।<sup>46</sup> सुन्दरदास की तरह ब्रह्मानंद ने भी इस ग्रंथ को छन्द वैविध्य के साथ लिखा है। सुन्दरदास ने छन्दों पर जिस ढंग से बल दिया और 'ज्ञान समुद्र' ग्रंथ में विविधि छंदों में कविता की उसी की तर्ज पर ब्रह्मानंद ने 'छंद रतावली' नामक ग्रंथ ही लिख डाला।47 ब्रह्मानंद ने इस ग्रंथ में पिंगल-शास्त्र में अपनी निपुणता दर्शाई है। ब्रह्मानंद के प्रसिद्ध ग्रंथ 'उपदेश चिंतामणी', 'संप्रदाय प्रदीप' और 'विवेक चिंतामणी' आदि ग्रंथों में सुन्दरदास की 'चितावणियों और 'गुरू संप्रदाय' ग्रंथ की झलक मिलती है।<sup>48</sup> जिस तरह सुन्दरदास ने लोक से 'बारहमासा' को लेकर उसमें ब्रह्म और जीव के विरह को दर्शाया है और उसमें विभिन्न प्रयोग किये हैं, उसी तरह ब्रह्मानंद ने अपने 'बारहमासा' में स्वामिनारायण के अक्षरधाम गमन पर उनसे ब्रह्मानंद के बिछुड़ने को आधार बनाकर 'बारहमासा' लिखा है। सम्प्रदाय की गतिविधियों को अपने बारहमासा में दर्शाते हुए ब्रह्मानंद ने अपने बारहमासा में भरपूर नए प्रयोग किये हैं।<sup>49</sup> सुन्दरदास के 'ज्ञान समुद्र' के जैसे पाठशाला से पढ़े कवियों दलपतराम डाह्याभाई ने 'ज्ञान चातूरी' और जीवणभाई डोसाभाई झीवा ने 'ज्ञान चंद्रिका' आदि ग्रंथ लिखे।

ब्रजभाषा पाठशाला में भक्ति के ग्रंथों का प्रतिनिधित्व सुन्दरदास के ग्रंथ ही करते थे। ऐसे में उत्तर भारत के भक्ति काव्य को उस ब्रजभाषा पाठशाला, जिसमें ज्यादातर रीति-कविता पढ़ाई जाती थी, में स्थान दिलवाने में सुन्दरदास के ग्रंथों की महत्ती भूमिका है, जिनका प्रभाव भी इस पाठशाला के कवियों पर कम नहीं पड़ा होगा।

#### <u>निष्कर्ष -</u>

औपचारिक शिक्षा को अपनी कविता में ढालने की वजह से सुन्दरदास संतकवियों की परम्परा में विशिष्ट स्थान रखते हैं। बनारस का महत्व 16वीं सदी के अन्त से ही अद्वैत वेदान्त के अध्ययन के लिये बढ़ जाता है, जब वहाँ कई आचार्य रहने लगते हैं। अद्वैत वेदान्त पर चल रहे विमर्श बनारस की चली आ रही शिक्षा पद्धति, जिसमें काव्यशास्त्र और वेदों, पुराणों की शिक्षा दी जाती थी, में नया आयाम जोड़ते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सुन्दरदास के काल में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का मतलब ही वेदान्त का अध्ययन करना हो जाता है, जिसके लिए राजस्थान से दादुपंथी संत ही नहीं भारत के अन्य क्षेत्रों से लोग बनारस जाते हैं। राजस्थान के राजाओं ने भी बनारस को उच्च शिक्षा का केन्द्र विकसित करने में महती भूमिका निभाई। मुगलकाल में एक युगान्तकारी काम यह हुआ कि उसमें चीजों को देशभाषा में सैद्धान्तिक रूप से 'डिफ़ाइन' करने की प्रवृत्ति बढ़ी। ये सैद्धान्तिक ग्रंथ अपने पाठक या श्रोता-वर्ग को ध्यान में रखकर लिखे जाते थे। संत अपने पंथों, सम्प्रदायों को आकार देने लगे और ऐसे ग्रंथ लिखने लगे जिनसे संत-शिक्षा भी दी जा सकती थी। इसी प्रक्रिया के तहत सुन्दरदास 'ज्ञान समुद्र' जैसे ग्रंथ की रचना करते हैं। दरबार में रहने वाले कवियों का रीति-ग्रंथ लिखना भी अभिजात वर्ग की शिक्षा से ही जुडा हुआ था।

साथ ही साथ भक्तमाल, परचई, वार्ता आदि संतचरित लेखनों के द्वारा संत और भक्त

भक्ति- संवेदना को ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करने भी लगे। भुज की ब्रजभाषा पाठशाला इस बात का अनोखा उदाहरण है कि कैसे ब्रजभाषा कविता को उत्तर भारत के दरबारों से बाहर भी प्रतिष्ठा मिली हुई थी। ब्रजभाषा और डिंगल आदि देशभाषाओं को प्राथमिकता देने वाली यह पाठशाला अपने आप में ब्रजभाषा की औपचारिक शिक्षा का अनुठा उदाहरण है। इस पाठशाला ने सुन्दरदास के युग में काव्य रचना के प्रतिमानों को विधिवत रूप से शिक्षा व्यवस्था का अंग बनाया था। छन्द, अलंकारों की विधिवत शिक्षा, 'बावनी' और 'समस्यापूर्ति' के द्वारा कवियों की परीक्षा आदि इस बात का उदाहरण है कि कविता रचने के प्रतिमानों में दरबार, पंथ, सम्प्रदायों तथा औपचारिक पाठशालाओं में पर्याप्त समानताएँ होती थीं। इस पाठशाला ने भक्त, दरबारी कवि तो दिये ही राष्ट्रवादी कविता भी 19वीं और 20वीं सदी के कवियों ने लिखी। सुन्दरदास न केवल भक्ति-संवेदना को एक प्रवीण कवि के रूप में प्रस्तुत करते हैं, वरन् उनकी कविता ऐसी थी जिससे अन्य कवि तथा संतों को शिक्षित भी किया जा सकता था। शायद सुन्दरदास ने कुछ कविता इसी उद्धेश्य के कारण लिखी भी हो। इसी कारण सुन्दरदास के दो ग्रंथों को भुज-पाठशाला के पाठ्यक्रम में स्थान मिला। कुल-मिलाकर सुन्दरदास न केवल भक्ति और रीति कविता, मठ और दरबार, ब्रज और अन्य देशभाषाओं के बीच की कड़ी साबित होते हैं, वे एक तरह से बनारस की वेदान्त आधारित शिक्षा और भुज की काव्यशास्त्र आधारित शिक्षा के बीच की कड़ी भी साबित होते हैं।

# सन्दर्भ और टिप्पणियाँ :

- 1 अगरचंद नाहटा (संपादक), *राघवदास कृत भक्तमाल,* पृ. 199
- 2 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), *सुन्दर ग्रन्थावली* (भाग-एक), पृ. 29-30
- 3 वही, पृ. 25-6
- 4 जी.एन.जोशी, *मुगलकाल में शिक्षा,* रैना बुक सेंटर, उदयपुर, 2001, पृ. 93-5
- 5 कृष्णलाल राय, *ऐजुकेशन इन मिडिएवल इंडिया*, बी.आर. पब्लिशिंग दिल्ली, 1984, पृ.68
- 6 वही, पृ. 69
- 7 जी.एन.जोशी, *मुग़लकाल में शिक्षा*, पृ. 93-4
- 8 विलियम क्रुक (संपादक), ट्रेवल्स इन इंडिया, जाँ. बापटिस्ट ट्रेवर्नियर, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2001, पृ.183
- 9 क्रिस्टोफ़र मिंकाव्स्की, अद्वैत वेदांत इन अर्ली मॉडर्न हिस्ट्री, साउथ ऐशियन हिस्ट्री एंड कल्चर, वोलियुम 2, नं. 2, अप्रैल 2011, 205-231, पृ. 216
- 10 वही, पृ. 217
- 11 वही, पृ. 218
- 12 वही, पृ. 214-5
- 13 जी.एन.जोशी, *मुग़लकाल में शिक्षा,* पृ. 90-91
- 14 कृष्णलाल राय, ऐजुकेशन इन मिडिएवल इंडिया, पृ. 77, कृष्णलाल राय स्कूल आफ़ ओरियंटल स्टड़ीज, लंदन के बुलेटीन पर अपनी शोध के अनुसार बताते हैं कि सुन्दरदास ने 30 वर्ष की आयु तक बनारस में शिक्षा प्राप्त की थी जो उस समय की हिन्दू धर्म की उच्च शिक्षा (हायर ऐजुकेशन) थी।
- 15 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर-ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 67
- 16 वही, पृ. 26
- 17 अर्थात "हज़ारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिये यत्न करता है, और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्व से अर्थात यथार्थ रूप से जानता है।" श्रीमद्भगवदृगीता, अध्याय-सात, श्लोक-तीन, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. 99
- 18 अर्थात "स्वप्न में प्रतीत होने वाले सभी पदार्थ शरीर के भीतर ही स्थित रहते है। वहाँ के संकुचित स्थान के कारण मनीशियों ने स्वप्न में दिखने वाले सभी पदार्थों का मिथ्यातत्व बतलाया है" उमेशानंद शास्त्री (संपादक), *मांडूक्य उपनिषद्* (द्वितीय प्रकरण, कारिका-एक) मांडूक्योपनिशत्, कैलाश विद्या भवन, ऋषिकेश, 2055 विक्रमी, पृ. 79
- 19 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 159-160
- 20 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-दो), पृ. 789
- 21 दयाशंकर शुक्ल, *हिन्दी का समस्यापूर्ति काव्य*, पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, 1967, पृ.
  6-7
- 22 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपादक), घनानंद कवित्त (प्रथम शतक), संजय बुक सेंटर, वाराणसी 2002, पृ.45
- 23 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 736

- 24 वही, पृ. 737
- 25 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-दो), पृ. 709
- 26 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपादक), *भिखारीदास ग्रंथावली* (भाग-दो), नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत् 2014, पृ. 5
- 27 देशराज सिंह भाटी (संपादक), *रसखान ग्रंथावली 'सटीक*,' अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1966,
  पृ. 160
- 28 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग-दो), पृ. 799
- 29 वही, पृ. 209
- 30 वही, पृ. 508
- 31 निर्मला आसनानी, कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला और उससे संबद्ध कवियों का कृतित्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1996, पृ. 93, इस ब्रजभाषा पाठशाला पर विस्तृत शोध करने वाली विदुषी निर्मला आसनानी ने कई विद्वानों के मतों का मूल्यांकन करते हुए 1749 ई. में इसकी स्थापना मानी है।
- 32 दृष्टव्य, पुष्पदान शम्भुदान गढ़वी, *महाराओश्री लखपतजी वृजभाषा पाठशाला (कच्छ नो किर्ती मुकुट),* राजकवि श्री शंभुदान गढ़वी जन्म शताब्दी समिति, भुज, 2012
- 33 निर्मला आसनानी, *कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला और उससे संबद्ध कवियों का कृतित्व,*पृ. 84
- 34 नारायण सिंह भाटी (संपादक), परम्परा पत्रिका का भुज (कच्छ) की काव्यशाला पर अंक, राजस्थानी शोध संस्थान,चैपासनी (जोधपुर), 1989, पृ. 17
- 35 निर्मला आसनानी, कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला और उससे संबद्ध कवियों का कृतित्व, पृ. 44-5
- 36 वही, पृ. 87-9
- 37 पुष्पदान गढ़वी-जो ब्रजभाषा पाठशाला के अंतिम आचार्य शंभुदान गढ़वी के पुत्र हैं-से भुज शहर में मेरी जून 20, 2016 को हुई बातचीत का अंश। पुष्पदान गढ़वी भुज लोकसभा क्षेत्र के चार बार सांसद रह चुके हैं।
- 38 निर्मला आसनानी,कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला और उससे संबद्ध कवियों का कृतित्व, पृ. 111, यह विडम्बना ही कही जाएगी कि आज़ादी के बाद इस पाठशाला को चारण भाटों के राजशाही शौक और अनुपयोगी मानकर बंद कर दिया गया। यह पाठशाला औपनिवेशिक काल की पूर्वसंध्या से लेकर भारत की आज़ादी तक के कालक्रम में हमारी सोच में हुए बदलाव की अनूठी दास्तान बयान करती है। इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि आज़ादी के बाद ऐसी पाठशाला को मध्यकालीन सोच की वाहक समझा गया, जो आधुनिक समाज के लिये उपयोगी नहीं मानी गई। आज जब हम सोचने-समझने के उन तरीकों या ज्ञान की उन पद्धतियों की चर्चा करते हैं जिनको औपनिवेशिक सत्ता-तंत्र के दुश्चक्र और हमारे वर्तमान जीवन पर पड़ रहे उसके प्रभाव ने लील लिया है तब यह पाठशाला और इतिहास बहुत कुछ कहता है।
- 39 फ़ांसुआ मालिसोन, द टीचिंग ऑफ़ ब्रज, गुजराती एंड बार्डिक पोइट्री ऐट द कोर्ट ऑफ़ कच्छ-द भुज ब्रजभाषा पाठशाला (1749-1948), पृ. 171-182, (संकलित-फ़ार्म्स ऑफ़ नालेज इन अर्ली मार्ड्न एशिया, संपादक- शैल्डन पोलक), दलपतराम ने गुजरात के स्वामिनारायण

संप्रदाय से संरक्षण पाया था और इसी संप्रदाय के अनुयायियों ने उन्हें ब्रजभाषा पाठशाला में पढ़ने भेजा था। दलपतराम को गुजरात का पहला आधुनिक कवि माना जाता है।

- 40 निर्मला आसनानी, कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला और उससे संबद्ध कवियों का कृतित्व, पृ. 99-100, पाठशाला के पाठ्यक्रम पर दलपतराम डाह्याभाई ने अपने लेख 'भुजमां कविताशाला विषे' में जिन 28 ग्रंथों का उल्लेख किया है उनमें भक्ति-साहित्य से सुन्दरदास के 'सुन्दरविलास' और 'ज्ञान समुद्र' का ही उल्लेख है। बाद में 'रामचरितमानस' को भी जोड़ा गया।
- 41 पुष्पदान गढ़वी और नीतुभाई जेठीदान झीबा (संपादक), लघु संग्रह, श्री शंभुदान गढ़वी जन्मशताब्दी समारोह समिति, भुज, 2010, पृ. 64
- 42 निर्मला आसनानी, कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला और उससे संबद्ध कवियों का कृतित्व, पृ. 106
- 43 वही, पृ. 104
- 44 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 118
- 45 योगी त्रिवेदी, भगवान स्वामिनारायण, द स्टोरी ऑफ़ हिज़ लाइफ़, स्वामिनारायण अक्षरपीठ, अहमदाबाद, 2014, ब्रह्मानंद स्वामी (1772-1832 ई.) माउंट आबू के निकट खाण गाँव के रहने वाले थे। स्वामिनारायण सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले इनका नाम लाड़ूदान था। ये गढ़वी चारण थे। इनकी काव्य प्रतिभा को पहचान कर सिरोही (राजस्थान) दरबार ने इनको भुज की ब्रजभाषा पाठशाला में पढ़ने भेजा। ये सिरोही, जामनगर, जूनागढ़ और भुज दरबारों से सम्मानित भी हुए और 1803 ई. के आस-पास भावनगर (गुजरात) में स्वामिनारायण संप्रदाय के अष्टकवियों में पहला स्थान दिया जाता है। इनके बारे में यह दोहा प्रसिद्ध है ब्रह्म मुनि कवि भानु सम, प्रेम मुक्त दोऊ चंद और कवि उडगण सम कहे कवि अविनाशानंद।
- 46 निर्मला आसनानी, कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला और उससे संबद्ध कवियों का कृतित्व,प. 211
- 47 वही, पृ. 216
- 48 दृष्टव्य, नारायण सेवादास शास्त्री (संपादक), *ब्रह्मानंद काव्य* (दो भागों में), श्री स्वामिनारायण विद्या भुवन, सुरेंद्रनगर, 2005
- 49 दलपत राजपुरोहित, *ब्रह्मानंद एंड हिज़ इनोवेशन इन द बारहमासा ज़ात्रा,* स्वामिनारायण हिन्दुइज़्म, संपादक- रेमंड विलियम और योगी त्रिवेदी, ओ.यू.पी., नई दिल्ली 2016, पृ. 218-232